श्रीमन्निग्रहाचार्यकृतो निग्रहागमान्तर्गतो

विशुद्धोपागमः

(प्राणविद्या)

संस्कृत पाठ एवं हिन्दी अनुवाद सहित

लेखक

श्रीभागवतानंद गुरु

आर्यावर्त सनातन वाहिनी 'धर्मराज' के सौजन्य से प्रकाशित

NOTION PRESS

NOTION PRESS
India. Singapore. Malaysia.

ISBN xxx-x-xxxxx-xx-x

First Published – 2022
Second Edition - 2022

This book has been published with all reasonable efforts taken to make the material error-free after the consent of the author. No part of this book shall be used, reproduced in any manner whatsoever without written permission from the author, except in the case of brief quotations embodied in critical articles and reviews. The Author of this book is solely responsible and liable for its content including but not limited to the views, representations, descriptions, statements, information, opinions and references ["Content"]. The Content of this book shall not constitute or be construed or deemed to reflect the opinion or expression of the Publisher or Editor. Neither the Publisher nor Editor endorse or approve the Content of this book or guarantee the reliability, accuracy or completeness of the Content published herein and do not make any representations or warranties of any kind, express or implied, including but not limited to the implied warranties of merchantability, fitness for a particular purpose. The Publisher and Editor shall not be liable whatsoever for any errors, omissions, whether such errors or omissions result from negligence, accident, or any other cause or claims for loss or damages of any kind, including without limitation, indirect or consequential loss or damage arising out of use, inability to use, or about the reliability, accuracy or sufficiency of the information contained in this book.

All Rights Reserved - Author

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु

श्रीमन्निग्रहाचार्यकृतो निग्रहागमान्तर्गतो

विशुद्धोपागमः

(प्राणविद्या)

संस्कृत पाठ एवं हिन्दी अनुवाद सहित

लेखक

श्रीभागवतानंद गुरु

आर्यावर्त सनातन वाहिनी 'धर्मराज' के सौजन्य से प्रकाशित

NOTION PRESS

आर्यावर्त सनातन वाहिनी 'धर्मराज' के सौजन्य से प्रकाशित

धर्मसंरक्षणार्थायाधर्मसंहारहेतवे।
निग्रहाणाञ्च धर्माज्ञा लोके लोके प्रवर्द्धताम्॥

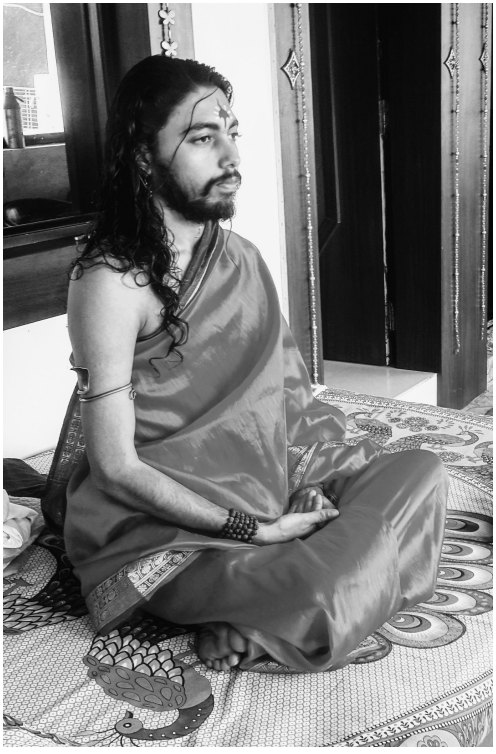

श्रीनिग्रहाचार्य (श्रीभागवतानंद गुरु)

प्राक्कथन

भारतीय सनातनी शास्त्रजगत् में बहुत सी लोकोपकारिणी विद्याएं निहित हैं। वेद-उपवेद, स्मृति-उपस्मृति, पुराण-उपपुराण, आगम-उपागम, तन्त्र-उपतन्त्र आदि से सज्जित सनातन धर्म अनेकानेक गूढ़ रहस्यों को प्रकाशित करता है। यामल तन्त्र का कथन है -

आगतं शिववक्त्रेभ्यो गतञ्च गिरिजाश्रुतौ।
मतं श्रीवासुदेवस्य तस्मादागम उच्यते॥

भगवान् शिव के मुख से निःसृत, देवी पार्वती के द्वारा श्रुत एवं भगवान् नारायण के द्वारा समर्थित शास्त्रों की आगमसंज्ञा है। महाभागवत में देवी कहती हैं -

आगमो निगमश्चैव द्वौ बाहू मम शङ्कर॥

हे शङ्कर ! आगम और निगम, ये मेरी दो भुजाएं हैं।

तत्त्ववैशारदी का कथन है -
तेन श्रुतिस्मृतीतिहासपुराणलक्षणादागमत आगच्छन्ति बुद्धिमारोहन्ति अस्मादभ्युदयनिःश्रेयसोपाया इत्यागमः॥

जो ज्ञान वेद, स्मृति, इतिहास, पुराण आदि के लक्षणों से युक्त होकर हमारे पास आते हैं, बुद्धि में आरूढ़ होते हैं, हमारी उन्नति एवं कल्याण के उपाय हैं, वे आगम हैं। शक्तिसङ्गममहातन्त्रराज का कथन है -

निग्रहागमतन्त्राणि शतद्विशतभेदतः।
अयमागमपर्यायः सिद्धरूपः प्रकाशितः॥

निग्रह सम्प्रदाय के आगमों में सौ तन्त्र एवं दो सौ उपतन्त्र हैं। प्रस्तुत लघुकाय ग्रन्थ निग्रहागमों का एक उपागम है। देवी नाभिदर्शना नायिका एवं श्रीमन्निग्रहाचार्य के मध्य प्राणविद्या के सम्बन्ध में हुए संवाद का प्रारूप रखने वाला यह 'विशुद्धोपागम' १८० श्लोकों तथा दश अधिकारों में निबद्ध है।

प्रसङ्गाधिकार में ग्रन्थ के अवतरण तथा तत्त्वमीमांसा का वर्णन है। स्थानाधिकार में देहस्थ प्राणों की अङ्गानुसार स्थिति बतायी गयी है। वर्णाधिकार में प्रत्येक प्राण से सम्बन्धित देवता एवं स्वरूप का वर्णन है। धर्माधिकार में प्राणों की क्रियाएं बतायी गयी हैं। यज्ञाधिकार में प्राणयज्ञ की विधि का सङ्क्षेपण है। आयामाधिकार में प्राणायाम की विधि और प्रभेद वर्णित हैं।

प्रकोपाधिकार में प्राण के प्रकोप से होने वाले रोगों का वर्णन है। चक्राधिकार में प्राणशक्ति एवं चक्रों के माध्यम से प्राप्त होने वाली सिद्धि तथा भूतशोधन का वर्णन है। प्राणाधिकार में ब्रह्माण्डस्थित सप्तविध प्राण, अग्नि एवं समिधा के विषय में बताया गया है। मोक्षाधिकार में प्राण का माहात्म्य एवं प्राणविद्या के लुप्त होने का कारण प्रकाशित किया गया है। आशा है कि श्रद्धालु पाठकगण इस उपागम में वर्णित शास्त्रीय विज्ञान को समझकर लाभान्वित होंगे।

प्रकाशक

* * *

निग्रहाचार्य श्रीभागवतानंद गुरु

विषय-सूची

अधिकार	पृष्ठ
१) प्रसङ्गाधिकार	8
२) स्थानाधिकार	12
३) वर्णाधिकार	19
४) धर्माधिकार	23
५) यज्ञाधिकार	26
६) आयामाधिकार	31
७) प्रकोपाधिकार	36
८) चक्राधिकार	39
९) प्राणाधिकार	44
१०) मोक्षाधिकार	50

* * *

॥ अथ निग्रहागमान्तर्गतो विशुद्धोपागमः ॥

॥अथ प्रसङ्गाधिकारः ॥

एकदा निग्रहाचार्यः सिन्धूद्भूतकलावयः ।
योनिबद्धासने स्थित्वा शाक्ते जीर्णसुरालये ॥०१ ॥
नाभिचक्रेऽनलं ध्यायँस्त्रिकोणे लोहितप्रभे ।
स जपं कर्तुमारेभेऽह्नि ददर्श दशाधिके ॥०२ ॥
रक्ताम्बरां रक्तनेत्रां गौरवर्णां मनोहराम् ।
द्विभुजाञ्चञ्चलापाङ्गीं स्वर्णसिंहासनस्थिताम् ॥०३ ॥
मन्दस्मितां सुगन्धाञ्च पीनोन्नतपयोधराम् ।
दन्तैर्दशन्तीमधरं सव्रीडां कामविह्वलाम् ॥०४ ॥
साब्रवीत्त्वं कथं विप्र भजसे मामनन्यभाक् ।
सन्तुष्टा तपसा तेऽहं नायिका नाभिदर्शना ॥०५ ॥

एक बार समुद्र से उत्पन्न (चन्द्रमा) के कला की अवस्था (सोलह वर्ष) वाले निग्रहाचार्य ने योनिबद्धासन में स्थित होकर किसी जीर्ण देवी मन्दिर में नाभिचक्र (मणिपुर) में रक्तवर्ण के त्रिकोण में अग्निदेव का ध्यान करते हुए जप करना आरम्भ किया। ग्यारहवें दिन उन्होंने लाल रंग के वस्त्रों को धारण की हुई,

लालिमा से युक्त नेत्रों वाली, गौरवर्ण की, मनोहरा स्त्री को देखा। उसके दो हाथ थे, उसके नेत्र चञ्चल हो रहे थे एवं वह स्वर्ण के सिंहासन पर बैठी हुई थी। वह मन्द मन्द मुस्कुरा रही थी, उसके शरीर से सुगन्ध निकल रही थी, वह श्रेष्ठ एवं उन्नत स्तनों वाली थी। वह अपने दांतों से होठों को काटती हुई, लज्जाशीला एवं कामातुरा हो रही थी। उसने कहा - "हे विप्र ! मैं नाभिदर्शना नाम की नायिका हूँ। मैं तुम्हारी तपस्या से सन्तुष्ट हूँ। तुम एकाग्रचित्त से मेरी आराधना क्यों कर रहे हो ?"

निग्रह उवाच

देवि त्वं भक्तसुलभे सद्ररहस्यप्रकाशिनी।
प्रयच्छ प्राणविद्यां मे निगमागमसम्मताम् ॥०६ ॥

निग्रहाचार्य ने कहा - "हे देवि ! तुम भक्तों के लिये सुलभ हो। उत्तम रहस्यों को बताने वाली हो। मुझे वेद एवं आगम से समर्थित प्राणविद्या प्रदान करो।"

नायिकोवाच

अथाहं सम्प्रवक्ष्यामि प्राणविद्याञ्चिदात्मिकाम्।
विशुद्धोपागमे त्वस्मिन्न वाच्या मोहवादिने ॥०७ ॥
व्योमाख्यं प्रथमं तत्त्वं शब्दतान्मात्रिकं तु यत्।

व्याप्नोति सकलं विश्वं विशुद्धाख्ये स्थितं महत् ॥०८॥
द्वितीयं वायुनामाख्यं द्वितान्मात्रिकमुच्यते।
विश्वगोऽन्तर्बहिर्वर्ती प्राणिनां हृदये स्थितः ॥०९॥
तृतीयस्त्वनलो नाम शब्दस्पर्शस्वरूपवान्।
नाभिचक्रे स्थितो भूत्वाङ्गत्यूर्द्धं पाचनोत्सुकः ॥१०॥
तत आपस्तु विज्ञेयश्चतुस्तान्मात्रिकान्वितम्।
आच्छादयति भूम्यादीन् स्वाधिष्ठानपरायणम् ॥११॥
स्थूलत्वगुणसंयुक्ता मूलाधारसमागता।
पञ्चतन्मात्रिका ज्ञेया पृथ्वी विस्तारयोगतः ॥१२॥

नायिका ने कहा - अब मैं इस विशुद्धोपागम में चित्स्वरूपिणी प्राणविद्या के विषय में कहने जा रही हूँ। यह मोहवादी व्यक्ति को नहीं बतानी चाहिये। पहला तत्त्व आकाश है, जो शब्द तन्मात्रा से युक्त है। यह सम्पूर्ण विश्व को व्याप्त करता है, महान् है एवं विशुद्ध नाम के चक्र में स्थित रहता है।

दूसरा तत्त्व वायु नाम का है जो द्वितान्मात्रिक (शब्द एवं स्पर्श) बताया जाता है। यह विश्व में अन्दर और बाहर विचरण करता है, सभी प्राणियों के हृदय (अनाहत चक्र) में स्थित रहता है। तीसरा तत्त्व अग्नि नाम वाला है जो शब्द, स्पर्श एवं रूप (इन

तीन) तन्मात्राओं से युक्त है। यह नाभिचक्र (मणिपुर) में स्थित होकर पाचनक्रिया की इच्छा रखते हुए सदैव ऊर्ध्वगामी होता है। इसके बाद जलतत्त्व को जानना चाहिए जो (शब्द, स्पर्श, रूप एवं रस, इन) चार तन्मात्राओं से युक्त है। यह स्वाधिष्ठान चक्र का आश्रय लेकर भूमि आदि को आच्छादित करता है। जो स्थूलत्व के गुण से युक्त है, मूलाधार चक्र में स्थित है, उसे विस्तृत होने से (शब्द, स्पर्श, रूप, रस एवं गन्ध, इन) पांच तन्मात्राओं वाली पृथ्वी जानना चाहिए।

पञ्चभूतेषु सञ्चारो जीवस्य क्रियते यया।
प्राणशक्तिरिति प्रोक्ता सा प्राणागमवेदिभिः ॥१३॥
यस्मिन्नाकृष्यते जीवो हृदयस्थेन वायुना।
पञ्चप्राणसमायुक्तः प्राणकोषेति कथ्यते ॥१४॥
प्राणोऽपानस्तथा व्यान उदानश्च समानकः।
नागः कूर्मश्च कृकलो देवदत्तो धनञ्जयः ॥१५॥
तेषां प्राणस्तु प्रथमो नवानामधिपः स्मृतः।
तस्यैव वशगाः सर्वे येऽन्येऽपानादयोऽनिलाः ॥१६॥

॥इति निग्रहागमान्तर्गते विशुद्धोपागमे प्रसङ्गाधिकारः॥

जिसके द्वारा इन पञ्चतत्त्वों में जीव का सञ्चार किया जाता है, उसे प्राणविद्या के विशेषज्ञ 'प्राणशक्ति' के नाम से कहते हैं। हृदय में स्थित वायु के द्वारा जिसमें जीव आकर्षित किया जाता है, वह पञ्चप्राण से युक्त 'प्राणकोष' के नाम से कहा जाता है। प्राण, अपान, व्यान, उदान, समान, नाग, कूर्म, कृकल, देवदत्त एवं धनञ्जय, इसमें 'प्राण' प्रथम बताया गया है जो शेष नौ का स्वामी है। अन्य जो अपान आदि वायु हैं, वे इसी के वशीभूत रहते हैं।

॥इस प्रकार निग्रहागम के अन्तर्गत विशुद्धोपागम में प्रसङ्गाधिकार पूर्ण हुआ॥

॥अथ स्थानाधिकारः॥

नायिकोवाच

यस्मिन् स्थाने स्थिता भूत्वा सञ्चरन्ति महाबलाः।
सम्प्रदायविभागेन रहस्यं तन्निशामय॥०१॥
चेष्टां वर्तयते वायुः प्राणिनां सर्वतः पृथक्।
भूतानां प्राणनाच्चैव प्राण इत्यभिधीयते॥०२॥
हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिसंस्थितः।
उदानः कण्ठगो वायुर्व्यानः सर्वशरीरगः॥०३॥

प्राणाश्रिताः समस्तास्तु क्षुद्रा ये पञ्चवायवः ।
ईदृशं दशप्राणानां संस्थानं योगिनां मते ॥०४॥

नायिका ने कहा - जिस स्थान में स्थित होकर ये महाबली (प्राण) विचरण करते हैं, उस रहस्य को अलग अलग सम्प्रदायों के विभाग के अनुसार श्रवण करो। सभी प्राणियों में वायु भिन्न भिन्न प्रकार की चेष्टा करता है। जीवों को जीवित रखने के कारण इसे 'प्राण' कहा जाता है। प्राणवायु हृदय में रहता है। गुदाद्वार में अपानवायु का स्थान है।

समानवायु नाभि में स्थित है। उदानवायु कण्ठ में रहता है और व्यानवायु पूरे शरीर में स्थित रहता है। जो (नागकूर्मादि) क्षुद्र वायु हैं, वे सब प्राणवायु के ही आश्रित समझे जाने चाहिए। इस प्रकार से योगियों के (सम्प्रदाय के) मत में दशविध प्राणों का स्थान बताया गया है।

तान्त्रिके मतवैभिन्न्यं क्वचिच्छास्त्रेषु दृश्यते ।
तत्र प्राधान्यरूपेण नाडीजाले स्थितोऽनिलः ॥०५॥
देहिनां मेढ्रगुदयोर्मध्ये कन्दं नवाङ्गुलम् ।
दशप्रधानसम्भूता नाड्यः कन्दपरायणाः ॥०६॥
कन्दमध्ये स्थिताग्नेया सुषुम्ना ब्रह्मगामिनी ।

तस्यां विचरति प्राणो मेरुदण्डमतिक्रमन् ॥०७ ॥
इडा तु वामनासान्ता यस्याश्चन्द्रोऽधिदैवतम् ।
तस्यां मरुद्विचरते समानो नामधारकः ॥०८ ॥

कुछ तान्त्रिक (सम्प्रदाय के) शास्त्रों में मतवैभिन्य दिखता है। वहाँ बताया गया है कि प्रमुखता से नाड़ियों के जाल में वायु रहते हैं। देहधारियों के मेढ्र एवं गुदा के मध्य में नौ अङ्गुल परिमाण वाला एक कन्द होता है जिससे उस कन्द का आश्रय लेकर दश नाड़ियां निकलती हैं।

कन्द के मध्यभाग में ब्रह्म के प्रति गमन करने वाली अग्निस्वरूपिणी सुषुम्ना नाम की नाड़ी स्थित है जिसमें मेरुदण्ड का अतिक्रमण करता हुआ प्राणवायु विचरण करता है। कन्द से निकल कर बायीं नासिका तक जाने वाली इडा नाम की नाड़ी है जिसके अधिदेवता चन्द्रमा हैं। उसमें समान नाम वाला वायु विचरण करता है।

पिङ्गला दक्षनासान्ता यस्याः सूर्योऽधिदैवतम् ।
तस्यामुदानश्चरते सदोर्द्धगमनोत्सुकः ॥०९ ॥
इडायाः पुरतो नाडी गान्धारी या गतिप्रदा ।
तस्यां मरुद्विचरते व्यानः सर्वगतिप्रदः ॥१० ॥

पृष्ठतः पिङ्गलाया या हस्तिजिह्वेति कीर्तिता।
नाडी तस्यां विचरते कृकरः क्षुत्तृषाकरः ॥११॥

दाहिनी नासिका तक जाने वाली पिङ्गला नाम की नाड़ी है जिसके अधिदेवता सूर्य हैं। उसमें सदैव ऊर्ध्वगमन की इच्छा रखने वाला उदानवायु विचरण करता है। इडानाड़ी के सामने जो गति प्रदान करने वाली गान्धारी नाम की नाड़ी है, उसमें सबों को गति प्रदान करने वाला व्यानवायु विचरण करता है। पिङ्गला के पीछे जो हस्तिजिह्वा नाम से प्रसिद्ध नाड़ी है, उसमें प्राणियों के अन्दर भूख-प्यास जगाने वाला कृकर नाम का वायु विचरण करता है।

पूषाख्या वामकर्णान्ता या गान्धारीसमुद्गता।
तस्यां विचरते वायुः कूर्माख्यः क्षुद्रसंज्ञकः ॥१२॥
हस्तिजिह्वासमुद्भूता दक्षिणश्रोत्रगामिनी।
तस्यां विचरते नागः कथ्यते या यशस्विनी ॥१३॥
अलम्बुषा तु या नाडी पायुर्देशगता शुभा।
तस्यां विचरतेऽपानो निम्नगामी बहिर्मुखः ॥१४॥
निद्राख्या या कुहूनाडी मेढ्रगाधोमुखी स्मृता।
तस्यां विचरते वायुर्देवदत्तो महाबलः ॥१५॥

कन्दमूलात्समारभ्याङ्गुष्ठपर्यन्तगामिनी।
तस्यां सञ्चरते वायुः केशिन्याञ्च धनञ्जयः ॥१६॥

गान्धारी के माध्यम से निकल कर बायें कान तक जाने वाली जो पूषा नाम की नाड़ी है, उसमें कूर्म नाम का क्षुद्रसंज्ञक वायु विचरण करता है। हस्तिजिह्वा के माध्यम से निकल कर दाहिने कान तक जाने वाली नाड़ी में नागवायु विचरण करता है। उस नाड़ी को यशस्विनी कहते हैं।

जो गुदाद्वार तक जाने वाली अलम्बुषा नाम की शुभा नाड़ी है, उसमें बाहर की ओर अग्रसर, निम्नगामी अपानवायु विचरण करता है। जो मेढ्रभाग की ओर जाने वाली अधोमुखी कुहूनाड़ी है, जिसे निद्रानाड़ी भी कहते हैं, उसमें महाबली देवदत्त नाम का वायु विचरण करता है। कन्दमूल से आरम्भ करके अंगूठे तक जाने वाली केशिनी नाड़ी में धनञ्जय नाम का वायु विचरण करता है।

चरन्ति दशनाडीषु दशप्राणादिवायवः।
प्राणाद्याः पञ्च विख्याताः क्रियाशक्तिबलोद्यताः ॥१७॥
वायवः पञ्च नागाद्या ज्ञानशक्तिबलोद्यताः।
एवं तान्त्रिकशास्त्रेषु प्राणस्थानं निगद्यते ॥१८॥

मतान्तरं प्रवक्ष्यामि यत्र नाडीविभाजनम्।
इडाख्या वहति प्राणं गान्धार्याख्या अपानकम् ॥१९॥
अलम्बुषा समानं तु कुहूर्व्यानं महाबलम्।
उदानं तु सुषुम्नाख्या पिङ्गला नागसंज्ञितम् ॥२०॥
पूषा वायुं तु कूर्माख्यं कृकरञ्च यशस्विनी।
हस्तिजिह्वा देवदत्तं शङ्खिनी तु धनञ्जयम् ॥२१॥

इस प्रकार से प्राण आदि दश वायु दश नाड़ियों में विचरण करते हैं। जो प्राण आदि पांच हैं, वे प्राणसंज्ञक हैं और क्रियाशक्ति के बल से सम्पन्न हैं तथा नाग आदि जो पांच हैं, वे वायुसंज्ञक हैं एवं ज्ञानशक्ति के बल से सम्पन्न हैं। इस प्रकार से तान्त्रिकशास्त्रों में प्राण का स्थान बताया जाता है। यहाँ मैं एक दूसरा मत भी बताती हूँ जो नाड़ियों के विभाजन से सम्बन्धित है।

इडानाड़ी प्राणवायु का एवं गान्धारी अपानवायु का वहन करती है। अलम्बुषा समानवायु का एवं कुहूनाड़ी महाबली व्यान का वहन करती है। सुषुम्ना नाम की नाड़ी उदानवायु का एवं पिङ्गला नागसंज्ञा वाले वायु का वहन करती है। पूषा कूर्म नाम वाले वायु का वहन करती है एवं यशस्विनी नाड़ी कृकर का वहन करती है। हस्तिजिह्वा देवदत्त का एवं शङ्खिनी धनञ्जय का वहन करती है।

कुहूर्निद्रेति सम्प्रोक्ता शङ्खिन्यपि तु केशिनी।
अथाहं सम्प्रवक्ष्यामि वैदिकानान्तु यन्मतम् ॥२२ ॥
आस्यनासिकयोर्मध्ये नाभिमध्ये तथा हृदि।
प्राणसञ्ज्ञोऽनिलो नित्यं वर्तते जीववर्द्धकः ॥२३ ॥
अपानो वर्तते नित्यं गुदमध्योरुजानुषु।
उदरे सकले कट्यां नाभौ जङ्घे च निम्नगः ॥२४ ॥
व्यानः श्रोत्राक्षिमध्ये च ककुद्ध्यां गुल्फयोरपि।
प्राणस्थाने गले चैव वर्तते सर्वव्यापकः ॥२५ ॥
उदानसञ्ज्ञको ज्ञेयः पादयोर्हस्तयोरपि।
समानः सर्वदेहेषु व्याप्य तिष्ठत्यसंशयः ॥२६ ॥
नागादिवायवः पञ्च त्वगस्थ्यादिषु संस्थिताः।
स सर्वप्राणविद्योगी मुच्यते प्राणविद्यया ॥२७ ॥

॥इति निग्रहागमान्तर्गते विशुद्धोपागमे स्थानाधिकारः ॥

कुहू को निद्रा एवं शङ्खिनी को केशिनी भी कहते हैं। अब जो वैदिक (सम्प्रदाय वालों का) मत है, उसे कहती हूँ। मुख एवं नासिका के मध्य में, नाभि के मध्य में तथा हृदय में प्राणसंज्ञक वायु सदैव जीवनीय शक्ति को बढ़ाता हुआ स्थित रहता है।

अपानवायु सदैव गुदा के मध्य में तथा उरु-जानुभाग में रहता है। नीचे की ओर गति वाला यह पेट, पूरे कमर, नाभि और जंघाओं में भी रहता है। व्यानवायु कान एवं आंखों में मध्य में, कन्धे और गले के पीछे, पिंडलियों में, हृदय में, गले आदि में सर्वत्र व्याप्त रहता है। उदानसंज्ञक वायु दोनों हाथ एवं पैरों में रहता है। समानवायु पूरे शरीर में (समानरूप से) व्याप्त रहता है, इसमें संशय नहीं है। नाग आदि जो पञ्चवायु हैं, वे हड्डी-चमड़ी आदि में स्थित रहते हैं। इस प्रकार से प्राणविद्या के माध्यम से सभी प्राणों को जानने वाला योगी मुक्त हो जाता है।

॥इस प्रकार निग्रहागम के अन्तर्गत विशुद्धोपागम में स्थानाधिकार पूर्ण हुआ॥

॥अथ वर्णाधिकारः॥

नायिकोवाच

प्राणस्य देवता शम्भुरपानस्य जलेश्वरः।
कूर्मस्य देवता चापि स एव कृकरस्य तु॥०१॥
व्यानस्य देवता सोमः समानस्य जनार्दनः।
उदानस्य पद्मजः स्यान्नागस्य तु दिवाकरः॥०२॥

देवदत्तस्य यो देवः क्षुदिति स प्रकीर्तितः ।
धनञ्जयाधिपो देवः सोमो वा पावकः स्मृतः ॥०३ ॥
एवं तान्त्रिकप्राणेशान् विद्धि नाडीपरायणान् ।
वैदिकं यन्मतं सर्वं वक्ष्यमाणं मया शृणु ॥०४ ॥

नायिका ने कहा - प्राणवायु के अधिपति देवता शिव हैं, अपानवायु के वरुण हैं। वही (वरुण) कूर्म एवं कृकर के भी देवता हैं। व्यान के देवता चन्द्रमा एवं समान के देवता विष्णु हैं। उदान के देवता ब्रह्मा एवं नागवायु के देवता सूर्य हैं। जो क्षुत् (भूख) नाम के देवता हैं वे देवदत्त के अधिपति हैं। धनञ्जय के स्वामी चन्द्रमा अथवा अग्नि बताये गये हैं। इस प्रकार से तान्त्रिक मत में जो नाड़ी में स्थित रहने वाले प्राणों के अधिपति हैं, उन्हें जानना चाहिए। अब मेरे द्वारा कहे जा रहे वैदिक मत को श्रवण करो।

प्राणस्य देवता विष्णुरपानस्य तु चन्द्रमा ।
कूर्मस्य देवदत्तस्य समानस्य जलेश्वरः ॥०५ ॥
उदानस्य शिवो देवः कृकरस्य दिवाकरः ।
क्षुद्देवता तु व्यानस्य नागस्य कमलोद्भवः ॥०६ ॥
धनञ्जयस्योत्तरेश एते प्राणेश्वराः स्मृताः ।

विद्रुमाश्मप्रतीकाशः प्राण आख्यायते बुधैः ॥०७॥
इन्द्रगोपसमो नागो व्यानस्तु फेनसदृशः।
कूर्मस्तु गगनाभासः समानकृकरावुभौ ॥०८॥
किञ्जल्कसदृशा देवदत्तोदानधनञ्जयाः।
या नाड्यः प्राणवाहिन्यस्तेषां वर्णानि संशृणु ॥०९॥

प्राण के देवता विष्णु हैं, अपान के देवता चन्द्रमा हैं। कूर्म, देवदत्त एवं समानवायु के देवता वरुण हैं। उदान के देवता शिव एवं कृकर के देवता सूर्य हैं। क्षुत् नाम वाले देवता व्यान के अधिपति हैं तथा नागवायु के देवता कमल से उत्पन्न होने वाले ब्रह्माजी हैं। उत्तर दिशा के अधिपति चन्द्रमा धनञ्जय के स्वामी हैं, इस प्रकार से (वैदिक मत में) प्राणेश्वर बताये गये हैं।

बुद्धिमानों के द्वारा प्राणवायु का रंग विद्रुममणि के समान (लाल) बताया गया है। इन्द्रगोप के समान (छींटदार लाल) नागवायु का वर्ण है। व्यानवायु फेन के समान (श्वेत) है। कूर्मवायु आकाश के समान (हल्की नीलिमायुक्त) है एवं समानवायु तथा कृकर को भी ऐसा ही जानना चाहिए। कमल की पंखुड़ियों के समान देवदत्त, उदानवायु एवं धनञ्जय को बताया गया है। जो प्राणों का वहन करने वाली नाड़ियां हैं, उनके वर्ण को सुनो।

शुक्लेडा पिङ्गला रक्ता गान्धारी पीतवर्णका।
हस्तिजिह्वा कृष्णरूपा पूषा स्यात्कृष्णपीतका ॥१० ॥
यशस्विनी श्यामवर्णा बभ्रुवर्णा ह्यलम्बुषा।
कुहूररुणसङ्काशा केशिनी ह्यञ्जनप्रभा ॥११ ॥
नाड्यः सर्वाः प्रवर्तन्ते दशप्राणवहाः स्मृताः।
कथितं प्राणनाडीनां वर्णं दैवं तथैव च ॥१२ ॥

॥इति निग्रहागमान्तर्गते विशुद्धोपागमे वर्णाधिकारः ॥

इडानाड़ी श्वेतवर्ण की है। पिङ्गला लाल है और गान्धारी पीले रंग की है। हस्तिजिह्वा काले रंग की और पूषा नाड़ी काले-पीले रंग की है। यशस्विनी कुछ श्यामवर्ण की है और अलम्बुषा अग्नि के समान (उज्ज्वल पीत) वर्ण की है। कुहूनाड़ी लाल रंग के समान एवं केशिनी काजल के समान है। ये सभी नाड़ियां प्रवर्तित होकर दशों प्राणों को वहन करने वाली बतायी गयी हैं। इस प्रकार से प्राणों एवं नाड़ियों के रंग एवं देवताओं के विषय में कहा गया।

॥इस प्रकार निग्रहागम के अन्तर्गत विशुद्धोपागम में
वर्णाधिकार पूर्ण हुआ॥

॥अथ धर्माधिकारः ॥

नायिकोवाच

यद्यत्कार्यं प्रकुर्वन्ति प्राणा ह्येते च वायवः ।
तदहं संविधास्यामि सावधानतया शृणु ॥०१ ॥
निश्वासोच्छ्वासकासैस्तु प्राणो जीवसमाश्रितः ।
प्रयाणं कुरुते यस्मात्तस्मात्प्राणः प्रकीर्तितः ॥०२ ॥
अवाङ्नयत्यपानाख्यो यदाहारादि भुज्यते ।
मूत्रशुक्रमलान्वायुरपानस्तेन कथ्यते ॥०३ ॥
पीतं भक्षितमाघ्रातं रक्तपित्तकफादिकम् ।
समं नयति देहेषु समानस्तेन उच्यते ॥०४ ॥

नायिका ने कहा - ये सभी प्राण एवं वायु जो जो कार्य करते हैं, उसे मैं बताने वाली हूँ, सावधान होकर श्रवण करो। श्वास लेना एवं छोड़ना, खाँसना आदि क्रियाओं को प्राण जीवों में स्थित होकर करता है। अन्तकाल में प्रयाण कर जाने से भी इसे प्राण कहते हैं। हम जो भी भोजन करते हैं, उसे नीचे ले जाने का कार्य अपानवायु का है। यह मल-मूत्र-वीर्यादि को भी नीचे ले जाता है, अतएव इसे अपान कहते हैं। हम जो खाते, पीते या सूंघते हैं, उनके सार को तथा शरीर में स्थित खून, पित्त, कफ

आदि को समान रूप से पूरे शरीर में ले जाने वाले वायु को समान कहते हैं।

यः स्पन्दत्यधरं वक्त्रं नेत्रगात्रप्रकोपनः।
उद्वेजयति मर्माणि उदानो वायुरीरितः ॥०५॥
व्यानो विनामयत्यङ्गं व्यानो व्याधिप्रकोपनः।
विवर्द्धयन् तथाङ्गानि व्यापनाद्व्यान उच्यते ॥०६॥
उद्गारे नाग इत्युक्तः कूर्म उन्मीलने स्थितः।
कृकरस्तु क्षुते चैव देवदत्तो विजृम्भणे ॥०७॥
मतान्तरेण नागस्य जृम्भणं सततं स्मृतम्।
शूलं कृकलजं देवदत्तस्योद्गार इत्यपि ॥०८॥

जो होठ को फड़काता है, मुख में हलचल करता है, नेत्र एवं शरीर को तापमान एवं स्थिति को प्रभावित करता है तथा मर्मस्थान में उद्वेग उत्पन्न करता है, उसे उदानवायु कहते हैं। व्यानवायु ही शरीर को रोगमुक्त करता है एवं व्यान ही रोगों को प्रकुपित भी करता है। शरीर के अङ्गों को विकसित करता हुआ उनमें व्याप्त रहने से ही इसे व्यान कहते हैं। डकार लेने में नागवायु को कारण बताया गया है। पलकों के झपकने में कूर्मवायु की स्थिति प्रधान है। भूख लगने में कृकर एवं जम्हाई

लेने में देवदत्त निमित्त है। दूसरे मत में कहते हैं कि नागवायु जम्हाई लेने में निमित्त है। शरीर में जो पीड़ा का अनुभव होता है, उसमें कृकल की प्रधानता है तथा डकार लेने में देवदत्त कारण है, ऐसा भी बताते हैं।

देहस्य नवमार्गेभ्यो नवप्राणा बहिर्गताः।
सात्मेन्द्रिया अन्तकाले विहायैकं धनञ्जयम् ॥०९॥
न जहाति मृतं गात्रं सर्वव्यापी धनञ्जयः।
प्रतीक्षते सदात्मानं प्रत्यावर्तनलोलुपः ॥१०॥
योगिनामेकविंशत्यह्नपर्यन्तं प्रतीक्षते।
शेषाणां त्र्यह्नपर्यन्तमात्मागमनकाङ्क्षया ॥११॥
नखास्थिकेशवार्द्धक्यं वीक्ष्यते यच्छवेषु च।
प्रक्षेपणं तथाङ्गानां तद्धनञ्जयगौरवात् ॥१२॥

॥इति निग्रहागमान्तर्गते विशुद्धोपागमे धर्माधिकारः॥

मृत्यु के समय शरीर के नौ मार्गों से आत्मा एवं इन्द्रियों के साथ नौ प्राण बाहर निकल जाते हैं किन्तु केवल एक धनञ्जय को पीछे छोड़ दिया जाता है। सर्वत्र व्याप्त रहने वाला धनञ्जय मरे हुए शरीर का भी परित्याग नहीं करता है। वह इस लोभ से वहीं

प्रतीक्षा करता हुआ ठहरता है कि सम्भवतः आत्मा पुनः लौट आये। आत्मा के पुनरागमन की इच्छा से धनञ्जय योगियों के शरीर में इक्कीस दिनों तक तथा शेष सामान्य जनों के शरीर में तीन दिनों तक प्रतीक्षा करता है। शवों में भी जो नाखून, हड्डी तथा केशों का बढ़ना एवं अङ्गों का अपने आप झटकना देखा जाता है, वह धनञ्जय के ही कारण होता है।

॥इस प्रकार निग्रहागम के अन्तर्गत विशुद्धोपागम में धर्माधिकार पूर्ण हुआ॥

॥अथ यज्ञाधिकारः॥

नायिकोवाच

यत्सर्वोपनिषत्सारं प्राणहोमेति कथ्यते।
मुनयो यत्प्रकुर्वन्ति तत्सर्वं कथ्यते मया॥०१॥
यजमानो यज्ञपत्नी प्राणहोम उपस्कराः।
येऽग्नयो देवता या च तद्रहस्यं निशामय॥०२॥
कनिष्ठिकाङ्गुलिकयाङ्गुष्ठेन प्राणमारुते।
जुहुयात्साधकोऽनामिकयापाने विचक्षणः॥०३॥
विधिना जुहुयान्मध्यमया व्याने तु याजकः।

उदाने पञ्चाङ्गुलिभिः प्रादेशिन्या समानके ॥०४॥
प्राणाय स्वाहापानाय स्वाहा व्यानाय चोच्चरेत्।
स्वाहोदानाय स्वाहा च समानाय तथैव च ॥०५॥

नायिका ने कहा - जो समस्त उपनिषदों का सार है, जिसे प्राणहोम कहा जाता है, जिसका अनुष्ठान मुनिजन करते हैं, वह सब मेरे द्वारा कहा जा रहा है। इस प्राणहोम में जो यजमान है, यज्ञपत्नी है, सामग्रियाँ हैं, जो अग्नि एवं देवता हैं, उनके रहस्य को श्रवण करो। कनिष्ठिका अङ्गुली एवं अंगूठे के सहयोग से (मुद्रानिर्माण करके) प्राणवायु में साधक को हवन करना चाहिए। बुद्धिमान् व्यक्ति अनामिका (एवं अंगूठे के सहयोग से मुद्रानिर्माण करके) अपानवायु में हवन करे। यज्ञकर्ता विधिपूर्वक मध्यमा (एवं अंगूठे के सहयोग से मुद्रानिर्माण करके) व्यानवायु में हवन करे। तर्जनी (एवं अंगूठे के सहयोग से मुद्रानिर्माण करके) समानवायु में तथा पांचों अङ्गुलियों से उदानवायु में हवन करे।

प्राणोऽग्निः परमात्मा च पञ्चवायुभिरावृतः।
अभयं सर्वभूतेभ्यो न मे भीतिः कदाचन ॥०६॥
उक्त्वा यः प्रणमेत्प्राणं तस्य प्राणो न रिष्यति।
आत्मा प्राणेष्टिविधौ यजमान उदाहृतः ॥०७॥

अस्य प्राणाग्नियज्ञस्य बुद्धिः पत्नी प्रकीर्तिता।
वेदा महर्त्विजः प्रोक्ताहङ्कारोऽध्वर्युसंज्ञकः ॥०८॥
चित्तं होता तथा प्राणो ब्राह्मणच्छंसी कथ्यते।
अपानः प्रतिप्रस्थाता प्रस्तोता व्यान एव च ॥०९॥
समानो मैत्रवरुण उद्गातोदान उच्यते।
शरीरं मुख्यवेदिश्चोत्तरवेदिस्तु नासिका ॥१०॥

(हवनकाल में) प्राणाय स्वाहा, अपानाय स्वाहा, व्यानाय स्वाहा, उदानाय स्वाहा एवं उसी प्रकार समानाय स्वाहा का उच्चारण करे। "पञ्चवायु से आवृत्त यह अग्निस्वरूप प्राण परमात्मा है। मैं सभी प्राणियों के प्रति अभय प्रदान करता हूँ तथा मुझे भी किसी प्रकार से भय नहीं है", इस प्रकार से कहकर जो प्राण को प्रणाम करता है, उसका प्राण क्षीण नहीं होता। इस प्राणेष्टि विधि में आत्मा ही यजमान बताया गया है।

इस प्राणाग्नियज्ञ में बुद्धि यज्ञपत्नी कही गयी है। वेद महान् ऋत्विक् बताये गये हैं एवं अहङ्कार अध्वर्यु कहा गया है। चित्त होता है, प्राणवायु को ब्राह्मणच्छंसी (प्रशस्ता) बताया गया है। अपानवायु प्रतिप्रस्थाता है एवं उदानवायु को उद्गाता कहा गया है। शरीर ही प्रधान वेदी है एवं नासिका उत्तरवेदी है।

मूर्द्धा तु द्रोणकलशश्चरणस्तु रथः स्मृतः ।
आज्यस्थाली सव्यपाणिरपसव्यकरस्तु स्रुक् ॥११॥
कथ्येते श्रोत्र आघारौ आज्यभागौ च चक्षुषी ।
धारापोता तथा ग्रीवा तन्मात्राणि सभासदः ॥१२॥
प्रयाजाः पञ्चभूतान्यनुयाजास्तद्गुणानि च ।
जिह्वेडा चैव दन्तोष्ठौ सूक्तवाकः स्मृतौ श्रुतौ ॥१३॥
शंयोर्वाकः स्मृतस्तालुर्याजकस्य स्मृतिर्दया ।
तत्र क्षान्तिरहिंसा चोङ्कारो यूपः प्रकीर्तितः ॥१४॥

मूर्द्धा द्रोणकलश है एवं चरणों को रथ बताया गया है। बायें हाथ को आज्यस्थाली (घृतपात्र) एवं दाहिने हाथ को स्रुक् कहते हैं। दोनों कान आघार (घृत) कहे जाते हैं एवं दोनों नेत्र आज्यभाग हैं। ग्रीवा वसोर्धारा को पवित्र करने वाली है एवं तन्मात्राएं इस यज्ञ की सभासद हैं।

प्रयाज (प्रधान अर्चकमण्डल) पञ्चमहाभूत हैं तथा अनुयाज (सहयोगी अर्चकमण्डल) उनके सम्बन्धित गुण हैं। जिह्वा को इडा (यज्ञभूमि अथवा दातव्यालभ्या गौ) कहते हैं तथा वेदों में उस यज्ञ का सूक्तपाठी दांत एवं होठ को बताया गया है। शान्ति पाठ का कार्य तालु करता है और दया याजक की स्मृति है।

आशा तु रशना ज्ञेया पशुः कामो मनो रथः।
ज्ञानेन्द्रियाणि पात्राणि केशा दर्भास्तथा स्मृताः ॥१५॥
अहिंसा इष्टयः प्रोक्ताः कर्मगावो हवींषि च।
सर्वकर्मफलत्यागः प्राणयज्ञस्य दक्षिणा ॥१६॥
देवतात्र परब्रह्म हंसो मन्त्र उदाहृतः।
अप्रत्यावर्तिनो लोकस्य सिद्धिरत्र काङ्क्षिता ॥१७॥
देहत्यागादवभृतमेवं यो यजते पुमान्।
पुनर्जन्म विना प्राणयोगी मोक्षञ्च प्राप्नुयात् ॥१८॥

॥इति निग्रहागमान्तर्गते विशुद्धोपागमे यज्ञाधिकारः॥

आशा को रस्सी समझना चाहिये, कामनाओं को पशु एवं मन को रथ कहा जाता है। (आशारूपिणी रस्सी से कामनारूपी पशुओं को बांधकर मनोरूपी रथ में लगाया जाता है)। ज्ञानेन्द्रियाँ इस यज्ञ में पात्र हैं, केश कुशा के समान बताये गये हैं। अहिंसा इष्टि है, कर्मेन्द्रियाँ आहुतियाँ बतायी गयी हैं। सभी कर्मों के फल की इच्छा का परित्याग ही इस प्राणयज्ञ की दक्षिणा है। यहाँ देवता परब्रह्म हैं, 'हंसः' (विपर्यय में सोऽहम्) उनका मन्त्र बताया गया है। जहाँ जाकर पुनः संसार में न लौटना पड़े, ऐसे अपुनरावर्ती लोक की प्राप्ति ही यहाँ आकाङ्क्षा

बतायी गयी है। शरीर के त्याग से ही इस यज्ञ का अवभृथ (यज्ञान्त स्नान) सम्पन्न होता है। इस प्रकार से जो व्यक्ति यजन करता है, वह प्राणयोगी बिना पुनर्जन्म के ही मोक्ष को प्राप्त कर लेता है।

॥इस प्रकार निग्रहागम के अन्तर्गत विशुद्धोपागम में यज्ञाधिकार पूर्ण हुआ॥

॥अथायामाधिकारः॥

नायिकोवाच

प्राणापानाख्यमनिलयोर्याभ्यासाद्वशीक्रिया।
प्राणायामेति योगोक्ता सर्वसिद्धिप्रदायिका॥०१॥
अगर्भश्च सगर्भश्च प्राणायामो द्विधा स्मृतः।
निर्बीजो वा सबीजश्चाप्युच्यते योगपारगैः॥०२॥
सगर्भो मन्त्रसंयुक्तोऽगर्भो मन्त्रविवर्जितः।
अगर्भाद्यः सगर्भस्स उक्तः शतगुणाधिकः॥०३॥

नायिका ने कहा - प्राण एवं अपान नाम के वायुद्वय को अभ्यास के द्वारा वश में करने की क्रिया है, वह योग में प्राणायाम के नाम से कही गयी है, जो सभी सिद्धियों को प्रदान करने वाली

है। प्राणायाम के दो भेद हैं - अगर्भ एवं सगर्भ। योग में निपुण जनों के द्वारा इसे निर्बीज एवं सबीज भी कहा गया है। मन्त्र से युक्त प्राणायाम सगर्भ है एवं मन्त्र से रहित अगर्भ है। जो सगर्भ है, उसका प्रभाव अगर्भ से सौ गुणा अधिक बताया गया है।

बहिःस्थं वायुमाकृष्याधोगामी कुरुते नरः।
होमोऽपाने तु प्राणस्य पूरकेति निगद्यते ॥०४॥
अन्तःस्थं वायुमाकृष्योर्द्धगामी क्रियते यदा।
होमः प्राणे त्वपानस्य रेचकेति निगद्यते ॥०५॥
यदान्तःस्थं बहिःस्थं वा न गृह्णाति न मुञ्चति।
प्राणापानगती रुद्धा कुम्भकेति निगद्यते ॥०६॥
स्वोद्भूतमनिलं योगी यदा भ्राम्यत्यनाहते।
जुहोति प्राणान् प्राणेषु नित्ययुक्तस्स उच्यते ॥०७॥

जब शरीर के बाहर स्थित वायु को खींचकर व्यक्ति अधोगामी बनाता है (श्वास लेता है), तब उसे प्राणवायु का अपानवायु में हवन करना कहते हैं और यह 'पूरक' के नाम से जाना जाता है। जब शरीर के भीतर स्थित वायु को खींचकर ऊर्ध्वगामी किया जाता है (श्वास छोड़ता है), तब उसे अपानवायु का प्राणवायु में हवन करना कहते हैं और यह 'रेचक' के नाम से जाना जाता

है। जब अन्दर या बाहर स्थित वायु को व्यक्ति न ग्रहण करता है और न छोड़ता है, तो प्राण और अपान की गति को अवरुद्ध करके उसे 'कुम्भक' कहते हैं। जब स्वाभाविक रूप से हृदय (अनाहत) में स्थित वायुतत्त्व का सम्भ्रमण योगी हृदय में ही करता है और प्राणों का हवन प्राणों में ही करता है तो उसे नित्ययुक्त कहा जाता है।

प्राणशक्तेस्तु केन्द्रं स्यात्पूरके मणिपूरके।
कुम्भकेऽनाहते यस्माद्धृदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः ॥०८॥
भ्रूमध्ये रेचके केन्द्रं प्राणशक्तेस्तु निश्चयेत्।
ब्रह्मरन्ध्रे सहस्रारे प्राणप्राणहवींषि च ॥०९॥
चतुर्धा पूरके मन्त्रं जपेन्नियतमानसः।
कुम्भके द्व्यष्टधा वै रेचके केवलमष्टधा ॥१०॥
अशक्तेऽर्द्धविधानं स्यादत्यशक्ते चतुर्थकम्।
सव्याहृत्यां तु गायत्र्यां प्राणायामस्त्रिभिस्त्रिभिः ॥११॥

जब व्यक्ति 'पूरक' क्रिया करे तो प्राणशक्ति का केन्द्र (अधोगामी बनाने के लिए हृदय से नीचे स्थित) मणिपूरक में होना चाहिए। 'कुम्भक' क्रिया के समय यह केन्द्र अनाहत चक्र में बनना चाहिए क्योंकि प्राण हृदय में प्रतिष्ठित रहते हैं। 'रेचक' क्रिया के

समय प्राणशक्ति का केन्द्र (ऊर्ध्वगामी बनाने के लिए हृदय से ऊपर) भ्रूमध्य में निश्चित करना चाहिए। जब प्राणों का प्राणों में ही हवन हो तो यह केन्द्र सहस्रार के ब्रह्मरन्ध्र में होना चाहिए। संयमित मन वाला साधक पूरक के समय मन्त्र को चार बार जपे। कुम्भक के समय मन्त्र की सोलह आवृत्ति होनी चाहिए एवं रेचक के समय केवल आठ आवृत्ति करे। इस नियम में अशक्त होने पर इसका आधा विधान करे एवं अत्यधिक अशक्त होने पर चौथाई विधान करे। यदि व्याहृतियुक्त गायत्री का जप करना हो तो तीनों प्राणायामों में तीन-तीन आवृत्ति करे।

न योजयेत्तर्जनीं वा प्राणायामे तु मध्यमाम्।
कनिष्ठानामिकाङ्गुष्ठैर्नासिकापुटधारणम् ॥१२॥
अथवा सम्प्रदायोक्तविधानमनुपालयेत्।
मतान्तरं यतीनां यस्मात्तेषां प्रणवे रतिः ॥१३॥
पूरणं षोडशैर्बीजैश्चतुःषष्ट्या तु कुम्भकम्।
द्वात्रिंशैस्सन्त्यजेद्वायुमेवं संन्यासिनां विधिः ॥१४॥
मात्रामानाश्रितः प्राणायामस्तु त्रिविधः स्मृतः।
एकमात्रो भवेत्कालो नेत्रोन्मीलनमीलने ॥ ॥१५॥
षट्त्रिंशन्मात्रिको प्राणायामः सर्वोत्तमः स्मृतः।
तत्त्वान्तो मध्यमः स्यादधमो द्वादशमात्रिकः ॥१६

प्राणायाम में तर्जनी अथवा मध्यमा अंगुली का प्रयोग न करे। नासिका के पुटों को कनिष्ठा, अनामिका एवं अङ्गुष्ठ के माध्यम से धारण करना चाहिए। अथवा अपने सम्प्रदाय में कहे गये विधान का अनुसरण करना चाहिए। संन्यासियों की निष्ठा प्रणव में होती है अतएव उनके लिये कुछ भिन्न मत है। सोलह प्रणवबीजों से पूरक हो, चौंसठ प्रणवबीजों से कुम्भक हो एवं बत्तीस प्रणवबीजों से वायु का परित्याग (रेचक) हो, इस प्रकार से संन्यासियों के लिए विधि है। मात्रा के मान से प्राणायाम के तीन प्रकार हैं। जितने अन्तराल में (स्वभावतः) नेत्रों की पलक एक बार झपकती है, उसे (प्राणविद्या में) काल की एक मात्रा कहते हैं। (पूरक-कुम्भक-रेचक को मिलाकर) छत्तीस मात्राओं का प्राणायाम सर्वोत्तम बताया गया है। चौबीस मात्राओं का प्राणायाम मध्यम है एवं बारह मात्राओं का प्राणायाम अधम होता है।

पूरके जायते स्वेदः कुम्भके कम्पनं तथा।
रेचके तापनाशः स्यादेवमायामलक्षणम् ॥१७॥
यथा वशीकृतो व्याघ्रः पशून् हन्ति न मानुषान्।
तथा वशीकृतः प्राणः पापं हन्ति न योगिनम् ॥१८॥

॥इति निग्रहागमान्तर्गते विशुद्धोपागम आयामाधिकारः॥

पूरक के समय शरीर में पसीना उत्पन्न होता है, कुम्भक के समय शरीर कांपने लगता है एवं रेचक के समय शरीर का तापमान घटने लगता है, (यदि ऐसा हो) तो यह प्राणायाम के लक्षण हैं। जैसे (प्रशिक्षकों के द्वारा) वश में किया गया बाघ केवल पशुओं को मारता है, मनुष्यों को नहीं, वैसे ही (योगी के द्वारा) वश में किया गया प्राण केवल पाप को मारता है, योगी को नहीं।

॥इस प्रकार निग्रहागम के अन्तर्गत विशुद्धोपागम में आयामाधिकार पूर्ण हुआ॥

॥अथ प्रकोपाधिकारः॥

नायिकोवाच

अथाहं सम्प्रवक्ष्यामि वायोर्देहे प्रकोपनम्।
महारोगा प्रजायन्ते शरीरे कुपितेऽनिले॥०१॥
प्रायशः कुरुते प्राणो हिक्काश्वासादिकान् गदान्।
ऊर्ध्वजत्रुगतान् रोगानुदानः प्रकरोति च॥०२॥
आमपक्वाशयचरः समानो जठराग्नियुत्।
सोऽन्नं पचति तज्जांश्च कुक्षिरोगान् प्रवर्द्धते॥०३॥

नायिका ने कहा - अब मैं वायु के देह में प्रकोप के विषय में कहती हूँ। शरीर में वायु के प्रकुपित होने से बड़े बड़े रोग उत्पन्न हो जाते हैं। प्रायः प्राणवायु हिचकी, श्वास (दमा आदि) से सम्बन्धित रोग देता है। ऊपर की हँसुली से सम्बन्धित (घेघा, थायरॉइड आदि) रोग उदानवायु करता है। समानवायु आमाशय एवं पक्वाशय में जठराग्नि से युक्त होकर विचरण करता हुआ अन्न को पचाता है एवं पाचनतन्त्र तथा उदरसम्बन्धी रोगों को विकसित करता है।

गुल्माग्निसादतीसारप्रभृतीन् कुरुते गदान्।
स्वेदासृक्स्रावणश्चापि पञ्चधा चेष्टयत्यपि ॥०४॥
क्रुद्धश्च कुरुते रोगान् प्रायशो व्यानमारुतः।
अपानस्तु शकृन्मूत्रं शुक्रगर्भार्तवानि च ॥०५॥
क्रुद्धश्च कुरुते रोगान् घोरान् बस्तिगुदाश्रयान्।
शुक्रदोषप्रमेहास्तु व्यानापानप्रकोपजाः ॥०६॥

प्रायः प्रकुपित हुआ व्यानवायु गुल्मरोग, मन्दाग्नि, अतिसार, अत्यधिक पसीना एवं खून निकलने आदि पांच रोगों को जन्म देता है। क्रुद्ध होने पर अपानवायु मूत्रकृच्छ्र, वीर्य एवं मासिक धर्म सम्बन्धी रोगों को जन्म देता है। बस्ति एवं गुदा-सम्बन्धी

(बवासीर आदि) रोग भी देता है। व्यान और अपान के प्रकोप से प्रमेह, वीर्यदोष आदि भी होते हैं।

यस्य प्रकुपिताः सर्वे शरीरे पञ्चवायवः।
तस्य देहं प्रणश्यन्ति वह्निः सर्वभुजो यथा ॥०७॥
मोहं मूर्च्छां पिपासाञ्च हृद्ग्रहं पार्श्ववेदनाम्।
वायुरामाशये क्रुद्धः शूलं नाभौ करोति च ॥०८॥
कृच्छ्रमूत्रपुरीषत्वमानाहं त्रिकवेदनाम्।
श्रोत्रादिष्विन्द्रियह्रासं कुर्यात् क्रुद्धः समीरणः ॥०९॥
वैवर्ण्यं स्फुरणं रौक्ष्यं त्वग्भेदं परिपोटनम्।
सव्रणां रक्तधमनीं करोति कुपितोऽनिलः ॥१०॥
यथा पर्वतधातूनामनलो दह्यते मलम्।
तथा देहस्थिता रोगा दह्यन्ते प्राणनिग्रहात् ॥११॥

॥इति निग्रहागमान्तर्गते विशुद्धोपागमे प्रकोपाधिकारः॥

जिसके शरीर में पाँचों वायु प्रकुपित हो जाते हैं, वे उसके शरीर को वैसे ही नष्ट कर देते हैं जैसे सबों को भक्षित करने वाला अग्नि सबकुछ नष्ट कर देता है। यदि वायु आमाशय के क्षेत्र में कुपित हो जाए तो चित्त में मोह, बेहोशी, प्यास लगना,

हृदयाघात, पसलियों में दर्द एवं नाभि में चुभन उत्पन्न करता है। वायु के (सम्बन्धित क्षेत्रों में) प्रकुपित होने से मल-मूत्र के त्याग में जलन एवं पीड़ा, रीड की हड्डी में वेदना, सुनने और देखने की क्षमता में कमी आदि भी होते हैं। शरीर की रंगत का नष्ट होना, अङ्गों का काँपना एवं रूखा होना, चमड़ी फटना, फोड़े फुंसी होना एवं खून की नसों में घाव होना, ये सब रोग कुपित वायु प्रदान करता है। जैसे पर्वत (खान) में स्थित धातुओं की अशुद्धि को अग्नि जलाकर नष्ट कर देता है, वैसे ही प्राण के संयमित होने से देह के रोग भी जलकर भस्म हो जाते हैं।

॥इस प्रकार निग्रहागम के अन्तर्गत विशुद्धोपागम में प्रकोपाधिकार पूर्ण हुआ॥

॥अथ चक्राधिकारः॥

नायिकोवाच

मूलाधारसमारभ्य सहस्रारान्तिकं सदा।
सुषुम्नामार्गमाश्रित्य चरन्ति प्राणशक्तयः॥०१॥
मूलाधारे यदा प्राणशक्तिकेन्द्रं भविष्यति।
तदेच्छास्थूलसूक्ष्मत्वं योगी प्राप्नोति सर्वथा॥०२॥

स्वाधिष्ठाने यदा प्राणशक्तिकेन्द्रं भविष्यति।
जलगोऽन्ननियन्ता च योगी भवति सर्वथा ॥०३॥
मणिपूरे यदा प्राणशक्तिकेन्द्रं भविष्यति।
अग्निशास्ता सुदूराक्षो योगी भवति सर्वथा ॥०४॥

नायिका ने कहा - मूलाधार से प्रारम्भ करके सहस्रारपर्यन्त सुषुम्नामार्ग का आश्रय लेकर प्राणशक्तियाँ सदैव विचरण करती हैं। जब मूलाधार में प्राणशक्ति का केन्द्र होगा तो योगी सभी प्रकार से इच्छानुसार शरीर को स्थूल या सूक्ष्म करने की शक्ति प्राप्त कर लेता है। जब स्वाधिष्ठान में प्राणशक्ति का केन्द्र होगा तो योगी सभी प्रकार से जल में चलने और अन्न (भूख-प्यास) के ऊपर नियन्त्रण करने वाला हो जाता है। जब मणिपुर में प्राणशक्ति का केन्द्र होगा तो योगी सभी प्रकार से अग्नि के ऊपर नियन्त्रण करने वाला और दूर की घटनाओं को बैठे बैठे देखने वाला बन जाता है।

अनाहते यदा प्राणशक्तिकेन्द्रं भविष्यति।
व्योमगो दूरश्रवणो योगी भवति सर्वथा ॥०५॥
विशुद्धाख्ये यदा प्राणशक्तिकेन्द्रं भविष्यति।
सर्वामयानि निर्जित्य सत्यवाक्यो भवेद्ध्रुवम् ॥०६॥

आज्ञाचक्रे यदा प्राणशक्तिकेन्द्रं भविष्यति।
त्रिकालदर्शी योगी च सर्वशास्त्रार्थविद्भवेत् ॥०७॥
सहस्रारे यदा प्राणशक्तिकेन्द्रं भविष्यति।
लभते योगसंसिद्धः परकायप्रवेशनम् ॥०८॥

जब अनाहत में प्राणशक्ति का केन्द्र होगा तो योगी सभी प्रकार से आकाश में विचरण करने वाला एवं दूर की बातों को बैठे बैठे सुनने वाला हो जाता है। जब विशुद्ध चक्र में प्राणशक्ति का केन्द्र होगा तो योगी सभी प्रकार के रोगों पर विजय प्राप्त करके निश्चय ही वाक्सिद्धि से युक्त हो जाता है। जब आज्ञाचक्र में प्राणशक्ति का केन्द्र होगा तो योगी तीनों काल की घटनाओं को जानने वाला एवं सभी प्रकार के शास्त्रों को जानने वाला बन जाता है। सहस्रार में जब प्राणशक्ति का केन्द्र होगा तो योगी सभी प्रकार से योग की सिद्धि को प्राप्त करके परकाया प्रवेश में दक्ष हो जाता है।

अस्थायिकायक्रमणे परित्यज्य धनञ्जयम्।
बहिश्चरन्ति योगीशाः स्थायित्वे सधनञ्जयाः ॥०९॥
यदा क्लस्यति तन्मात्रमेकं मूले च साधकः।
तदा पृथ्वी भवेदापो प्राणसामर्थ्यगौरवात् ॥१०॥

यदा क्रस्यति तन्मात्रमेकं वापि युनक्ति च।
स्वाधिष्ठाने तदा वारि पावको वा धरा भवेत् ॥११॥
यदा क्रस्यति तन्मात्रमेकं वापि युनक्ति च।
मणिपूरे तदा वह्निरनिलो वा जलं भवेत् ॥१२॥

जब अस्थायी रूप से परकाया प्रवेश करना हो तो योगिजन धनञ्जय को छोड़कर (शरीर से) बाहर विचरण करते हैं और यदि स्थायी रूप से देहपरिवर्तन करना हो तो धनञ्जय के साथ ही निकलते हैं। जब मूलाधार में साधक एक तन्मात्रा को नष्ट करता है तो प्राण के सामर्थ्य के प्रभाव से पृथ्वी जल में परिवर्तित हो जाती है। जब साधक स्वाधिष्ठान में एक तन्मात्रा को नष्ट करता है तो जल अग्नि बन जाता है और जब वहीं एक तन्मात्रा को जोड़ता है तो जल पृथ्वी बन जाता है। जब साधक मणिपुर में एक तन्मात्रा को नष्ट करता है तो अग्नि वायु बन जाता है और जब वहीं एक तन्मात्रा को जोड़ता है तो अग्नि जल में परिवर्तित हो जाता है।

यदा क्रस्यति तन्मात्रमेकं वापि युनक्ति च।
अनाहते तदा वायुर्गगनं वा शुचिर्भवेत् ॥१३॥
यदा युनक्ति तन्मात्रमेकञ्चक्रे विशुद्धके।

तदा व्योम भवेद्वायुः प्राणसामर्थ्यगौरवात् ॥१४॥
प्राणेन पञ्चतत्त्वानि यन्त्रितानि कलेवरे।
रथस्थाः सङ्कुलक्षेत्रे सूतेन तुरगा यथा ॥१५॥

॥इति निग्रहागमान्तर्गते विशुद्धोपागमे चक्राधिकारः॥

जब साधक अनाहत में एक तन्मात्रा को नष्ट करता है तो वायु आकाश बन जाता है और जब वहीं एक तन्मात्रा को जोड़ता है तो वायु अग्नि में बदल जाता है। जब साधक विशुद्ध चक्र में एक तन्मात्रा को जोड़ता है तो प्राण के सामर्थ्य के प्रभाव से आकाश वायु में परिवर्तित हो जाता है। जैसे युद्धभूमि में रथ में जुते घोड़े सारथी के द्वारा नियन्त्रित किये जाते हैं, वैसे ही शरीर में पञ्चतत्त्व प्राण के द्वारा नियन्त्रित किये जाते हैं।

॥इस प्रकार निग्रहागम के अन्तर्गत विशुद्धोपागम में
चक्राधिकार पूर्ण हुआ॥

॥अथ प्राणाधिकारः ॥

नायिकोवाच

शरीरस्था दशप्राणा ब्रह्माण्डे तु त्रयस्तथा।
प्राणोऽपानश्च व्यानश्च प्रत्येकः सप्तसङ्ख्यकः ॥०१॥
सप्त प्राणास्तथा व्याना अपानाश्च तथाविधाः।
सप्ताग्नयश्च समिधो ब्रह्माण्डे सम्प्रकीर्तिताः ॥०२॥

नायिका ने कहा - शरीर में दशप्राण स्थित रहते हैं और ब्रह्माण्ड में तीन रहते हैं। प्राण (ऊर्ध्वगामी), अपान (अधोगामी) एवं व्यान (सर्वगामी) - इन सबके सात-सात की संख्या में प्रभेद होते हैं। सात प्रकार के प्राण हैं, व्यान एवं अपान भी उतने ही हैं। सात प्रकार की अग्नि और समिधा ब्रह्माण्ड में बताये गये हैं।

यः प्राण ऊर्ध्वनामासौ पावके स प्रतिष्ठितः।
द्वितीयः प्रौढनामासौ भास्करे स प्रतिष्ठितः ॥०३॥
तृतीयोऽभ्यूढनामासौ स सोमे सम्प्रतिष्ठितः।
चतुर्थश्च विभुर्नाम वायुस्तस्य नियोजकः ॥०४॥
पञ्चमो योनिनामासौ स जले सम्प्रतिष्ठितः।
षष्ठः प्राणः प्रियाख्यश्च पशवो यस्य मूर्तयः ॥०५॥

सप्तमश्चापरिमितः स प्रजासु प्रतिष्ठितः ।
एवं सप्तविधः प्राणोऽपानस्य शृणु साम्प्रतम् ॥०६॥

जो (पहला) प्राण है, उसका नाम ऊर्ध्व है और वह अग्नि में प्रतिष्ठित रहता है। दूसरे प्राण का नाम प्रौढ है एवं वह सूर्य में प्रतिष्ठित रहता है। तीसरे प्राण का नाम अभ्यूढ है और वह चन्द्रमा में प्रतिष्ठित है। चौथे प्राण का नाम विभु है और उसका नियोजक वायु है। पांचवें प्राण का नाम योनि है और वह जल में प्रतिष्ठित है। छठे प्राण को प्रिय कहते हैं जिसका मूर्तरूप पशु हैं। सातवें प्राण का नाम अपरिमित है और वह प्रजाओं में प्रतिष्ठित है। इस प्रकार से सात प्रकार का प्राण है, अब अपान के प्रभेद सुनो।

पूर्णिमा प्रथमोऽपानोऽष्टका ज्ञेयो द्वितीयकः ।
अमावस्या तृतीयश्च श्रद्धा ज्ञेयो चतुर्थकः ॥०७
दीक्षाख्यो पञ्चमोऽपानो यज्ञाख्यो षष्ठ एव च ।
दक्षिणा सप्तमोऽपानोऽपानं प्राणविदो विदुः ॥०८॥
व्यानस्तु प्रथमो भूमिरन्तरिक्षं द्वितीयकः ।
द्यौस्तृतीयश्च नक्षत्राणि व्यानस्तु चतुर्थकः ॥०९॥
ऋतवः कालमार्गस्थास्ते व्यानाः पञ्चमाः स्मृताः ।

आर्तवा ये शरीरस्था नारीणां तेऽग्रसङ्ख्यकाः ॥१० ॥
वत्सरः सप्तमो व्यानो ब्रह्माण्डे सम्प्रकीर्तितः ।
लोके प्रज्वलितो वह्निर्लौकिकः कथ्यते बुधैः ॥११ ॥

पूर्णिमा अपान का प्रथम भेद है। इष्टका को दूसरा अपान जानना चाहिए। तीसरा अपान अमावस्या है और श्रद्धा को चौथा अपान जानना चाहिए। पांचवें अपान को दीक्षा कहते हैं, छठे अपान को यज्ञ कहते हैं। सातवें अपान को दक्षिणा कहते हैं, इस प्रकार से अपान को प्राणवेत्ता जन जानते हैं।

व्यान के प्रभेदों में पहला व्यान पृथ्वी है। दूसरा व्यान अन्तरिक्ष है। स्वर्ग तीसरा व्यान एवं नक्षत्र चौथे व्यान हैं। काल के मार्ग में स्थित ऋतुओं (मौसम) को पञ्चम व्यान बताया गया है। जो ऋतु स्त्रियों के शरीर में (मासिक धर्म के रूप में) स्थित हैं, वे आगे की सङ्ख्या वाले (छठे) व्यान हैं। संवत्सर ब्रह्माण्ड में सातवें व्यान के रूप में बताया गया है। जो संसार में प्रज्वलित रहने वाली सामान्य अग्नि है, उसे बुद्धिमानों के द्वारा लौकिकाग्नि कहा जाता है।

यः सूर्यमण्डलस्थायी सहस्रांशुसमन्वितः ।
सूर्याग्निरिति स ज्ञेयः सर्वलोकप्रकाशकः ॥१२ ॥

मुखे यः सर्वजीवानां तिष्ठति दर्शनानलः।
शरीराग्निस्तु यो देहज्वरातापप्रदायकः ॥१३॥
हृदयेऽर्द्धेन्दुसमदृक्स कोष्ठाग्नीति कथ्यते।
वैश्वानरस्तु जठरे प्राणापानसमन्वितः ॥१४॥
भक्षितं पचते नित्यं सर्वमन्नञ्चतुर्विधम्।
समुद्रे बडवाकार एवं वह्निस्तु सप्तधा ॥१५॥

जो सूर्यमण्डल में रहने वाली, सहस्रों किरणों से युक्त, सभी लोकों को प्रकाशित करने वाली अग्नि है, उसे सूर्याग्नि के नाम से जानना चाहिए। जो सभी प्राणियों के मुख में स्थित है, वह दर्शनाग्नि है। शरीर को बुखार का ताप प्रदान करने वाली शरीराग्नि है। जो हृदय में अर्द्धचन्द्र के समान स्थित रहती है, उसे कोष्ठाग्नि कहते हैं। प्राण और अपान से युक्त होकर जो चार प्रकार के भक्षित समग्र अन्न को सदैव पेट में पचाती है, वह वैश्वानराग्नि है। समुद्र में बडवा (घोड़े) की आकृति वाली बडवाग्नि रहती है, इस प्रकार से अग्नि के सात प्रकार होते हैं।

भूर्भुवः स्वर्महश्चैव जनश्च तप एव च।
सत्यलोकश्च सप्तैते लोकास्तु परिकीर्तिताः ॥१६॥
अतलं वितलञ्चैव सुतलञ्च तलातलम्।

महातलं रसाख्यञ्च पातालं सप्तमं स्मृतम् ॥१७॥
भूराद्यसत्यपर्यन्ता लोकाः प्राणवशानुगाः ।
ये सप्ताधस्तललोकास्ते सर्वेऽपानयन्त्रिताः ॥१८॥
ऊर्ध्वलोकास्तु समिधः प्राणस्य परिकीर्तिताः ।
अधोलोकास्तु समिधोऽपानस्य परिकीर्तिताः ॥१९॥

भूः, भुवः, स्वः, महः, जनः, तपः और सत्यलोक, ये सात लोक बताये गये हैं। अतल, वितल, सुतल, तलातल, महातल, रसातल एवं सातवां पाताल बताया गया है। भूर्लोक से प्रारम्भ करके सत्यलोक पर्यन्त सभी (ऊर्ध्वगामी) लोक प्राण के वश में रहते हैं। जो सात अधोमुखी तललोक हैं, वे अपान के द्वारा नियन्त्रित होते हैं। ऊर्ध्वलोक प्राणवायु की समिधा कहे गये हैं और अधोलोक अपानवायु की समिधा बताये गये हैं।

ऊर्ध्वगामी यदा व्यानोऽभवत्तत्समिधः शृणु ।
गायत्र्यादीनि सप्तान्यतिजगत्यादीनि सप्त च ॥२०॥
कृत्यादिसप्तच्छन्दांसि मिलित्वा समिधोऽभवन् ।
अधोगामी यदा व्यानोऽभवत्तत्समिधः शृणु ॥२१॥
पायूपस्थौ तथा चक्षुः श्रोत्रञ्च मुखमण्डलम् ।
नासिका हृदयञ्चैव मिलित्वा समिधोऽभवन् ॥२२॥

एवं प्राणरहस्यं गोपनीयं महदद्भुतम्।
मत्तो ज्ञात्वा पुनर्ब्रूहि किं भूयः श्रोतुमिच्छसि ॥२३॥

॥इति निग्रहागमान्तर्गते विशुद्धोपागमे प्राणाधिकारः॥

जब व्यानवायु ऊर्ध्वगामी हुआ, तब उसकी समिधाएं जो हुए, उन्हें सुनो। गायत्री आदि सात, अतिजगती आदि सात एवं कृति आदि सात छन्द मिलकर समिधा बने। जब व्यानवायु अधोगामी हुआ, तब उसकी समिधाएं जो हुए, उन्हें सुनो। लिङ्ग, गुदा, नेत्र, कर्ण, मुख, नासिका एवं हृदय मिलकर समिधा बने। इस अत्यन्त अद्भुत एवं गोपनीय प्राणरहस्य को मुझसे जानकर, अब पुनः कहो कि और क्या सुनना चाहते हो ?

॥इस प्रकार निग्रहागम के अन्तर्गत विशुद्धोपागम में
प्राणाधिकार पूर्ण हुआ॥

॥अथ मोक्षाधिकारः ॥

निग्रह उवाच

स्वशरीरस्थमनिलं कथं जानन्ति नो जनाः ।
कस्माद्गुह्यतमा ह्येषा प्राणविद्याभिशंस मे ॥०१ ॥

नायिकोवाच

विद्धि त्वं त्रीणि रूपाणि चेतनस्थितिभेदतः ।
जीवात्मापरमात्मान एकस्तु त्रिविधोऽभवत् ॥०२ ॥
कर्ताभिमानसंयुक्तो भुङ्क्ते कर्म कृतं पुरा ।
अग्निवायुसमायुक्तश्चेतनो जीव उच्यते ॥०३ ॥
कृतं भुङ्क्ते न प्रारब्धं केवलं कुरुते यदा ।
तदात्मा चेतनो ज्ञेयः कर्ताहङ्कारवर्जितः ॥०४ ॥
साक्षीभावे यदा स्थित्वा नाश्नाति न करोति च ।
मायापाशविनिर्मुक्तः परब्रह्म तदोच्यते ॥०५ ॥

निग्रहाचार्य ने कहा - "अपने ही शरीर में स्थित प्राणवायु को लोग क्यों नहीं जान पाते ? यह प्राणविद्या इतनी गुप्त क्यों है, यह मुझे बतायें।"

नायिका ने कहा - तुम चेतन के स्थितिभेद के अनुसार तीन रूपों को जानो। जीव, आत्मा एवं परमात्मा - एक ही चेतन इन तीन रूपों में हुआ। जब चेतन कर्ताभिमान से युक्त होकर पूर्वकृत कर्म का फल भोगता है तो अग्नि एवं वायु से युक्त होकर वह जीव कहलाता है। वही चेतन जब कर्ताभिमान से रहित होकर केवल कर्म करता है, किन्तु किये गये कर्मप्रारब्ध का उपभोग नहीं करता है, तो उसे आत्मा के नाम से जानना चाहिए। जब चेतन साक्षीभाव में स्थित होकर न क्रिया करता है और न फलोपभोग करता है, तब माया के पाश से मुक्त, उसे परब्रह्म कहा जाता है।

जीवस्तेजोमयो ज्ञेयः प्राणो वायुमयः स्मृतः।
अनलानिलयोर्योगे जन्तवो जीविताः स्मृताः ॥०६॥
हृदिस्था देवताः सर्वा हृदि प्राणाः प्रतिष्ठिताः।
प्राणे प्रोतमिदं सर्वं प्राणादेव हि चेष्टते ॥०७॥
प्राणाज्जातमिदं विश्वं सर्वं प्राणात्मकञ्जगत्।
न प्राणात्परमं किञ्चित्प्राणे सर्वं प्रतिष्ठितम् ॥०८॥

जीव को अग्निमय जानना चाहिए एवं प्राण वायुमय है। जब अग्नि (जीव) एवं वायु (प्राण) का संयोग होता है तो जन्तुओं को जीवित समझा जाता है। हृदय में सभी देवता स्थित हैं, हृदय में

प्राण प्रतिष्ठित हैं। यह सबकुछ प्राण में ही ओतप्रोत है तथा प्राणों के कारण ही चेष्टा करता है। प्राण से ही सम्पूर्ण विश्व उत्पन्न हुआ है और सम्पूर्ण जगत् प्राणमय है। प्राण से अधिक कुछ नहीं, प्राण में सब कुछ प्रतिष्ठित है।

सत्यलोके पुरा विष्णुराह कोऽस्ति महाबलः।
निर्गच्छत परीक्षार्थमिदं सर्वे कलेवरात् ॥०९॥
यस्मिन् बहिर्गते देहोऽयं पतिष्यति निष्क्रियः।
यस्मिन् प्रविष्टे स्वस्थः स्यात्स देवानां प्रभुर्भवेत् ॥१०॥
शक्रसूर्यादयः सर्वे श्रुत्वा नारायणीं गिराम्।
स्वाधिकारगताङ्गान्यारेभिरे हन्तुमुग्रतः ॥११॥
अघ्राणचक्षुर्जिह्वास्यहस्तोपस्थाङ्घ्रिकर्णवान्।
ज्ञानकर्मेन्द्रियैर्हीनो न देहः पतितस्तदा ॥१२॥
अन्तःकरणहीनोऽपि मनोबुद्धिविवर्जितः।
तदा जडममुं प्राहुर्न देहः पतितस्तदा ॥१३॥
पश्चात्प्राणे विनिष्क्रान्ते मृतं देहं तदा विदुः।
पुनः सन्निहिते प्राणे जीवितस्तं विदुः सुराः ॥१४॥
एवं देवा विनिश्चित्य प्राणं देवाधिकं विभुम्।
ततोऽभिषेचयाञ्चक्रुर्यौवराज्ये तु निग्रह ॥१५॥

स्वयं नारायणांशोऽभूत्प्राणः सर्वबलाधिकः ।
महाविष्णोर्बलं प्राणस्तथा विष्णुवशस्थितः ॥१६॥

पूर्वकाल में सत्यलोक में भगवान् विष्णु ने कहा कि कौन महाबली है, इस बात की परीक्षा के लिए सभी देवता शरीर से बाहर निकल जाएं। जिसके बाहर निकलने पर शरीर निष्क्रिय होकर गिर जायेगा और जिसके प्रवेश करने पर पुनः स्वस्थ हो जायेगा, वह देवताओं का स्वामी बनेगा। भगवान् नारायण की ऐसी वाणी सुनकर इन्द्र, सूर्य आदि सभी देवता अपने अपने अधिकार वाले अङ्गों को उग्रतापूर्वक नष्ट करने लगे। नाक, आंख, जिह्वा, मुख, हाथ, उपस्थ, पैर, कान आदि ज्ञानेन्द्रिय एवं कर्मेन्द्रियों से हीन होने पर भी वह शरीर पतित नहीं हुआ। मन, बुद्धि आदि अन्तःकरण से हीन होने पर भी उस देह को देवताओं ने जड़ तो कहा किन्तु वह पतित नहीं हुआ। बाद में प्राण के उस शरीर से बाहर निकलने पर, उस देह को मृत कहा गया और पुनः प्राण के प्रविष्ट होने पर देवताओं ने उस शरीर को जीवित कहा। हे निग्रहाचार्य ! तब देवताओं ने प्राण को सभी देवताओं में श्रेष्ठ एवं स्वामी निश्चित करके युवराज पद पर उसका अभिषेक कर दिया। सभी बलशालियों में श्रेष्ठ वह प्राण स्वयं नारायण के अंश से युक्त हुआ। महाविष्णु का बल प्राण ही है जो उनके वश में रहता है।

एकदाचिन्तयत्प्राण इष्ट्याहं माधवं महे।
हयमेधेन क्षेत्रार्थं भागीरथ्यास्तटं गतः ॥१७॥
स ददार सरित्कूलं नानादेवगणैर्वृतः।
भूशुद्ध्यर्थं हलाग्रेण मण्डपाधानहेतवे ॥१८॥
तत्र भूम्यन्तरे कण्वो वल्मीकैरावृतस्तपन्।
हलोत्कृष्टो विनिष्क्रान्तस्स तदा कुपितोऽभवत् ॥१९॥
विज्ञास्यन्ति हृदिस्थेऽपि न ख्यातिं मनुजास्तव।
भव त्वं लुप्तमाहात्म्यमिति प्राणं शशाप सः ॥२०॥
एवं श्रुत्वा मुनेर्वाक्यं प्राणोऽपि त्रिदशेश्वरः।
चुकोप गुरुणा हीनो भव त्वं गर्हितक्रियः ॥२१॥
प्रतिदण्ड्य तदा कण्वं प्राणो लुप्तप्रभाववान्।
अप्रत्यक्षस्वरूपेण उवास हृदि देहिनाम् ॥२२॥

एक बार प्राण ने चिन्तन किया कि मैं अश्वमेध यज्ञ के माध्यम से भगवान् विष्णु का यजन करूँ। ऐसा सोचकर क्षेत्रचयन हेतु वे गङ्गाजी के तट पर गये। सभी देवताओं से घिरे हुए उन प्राणदेव ने भूमिशोधन एवं मण्डपनिर्माण हेतु हल के अग्रभाग से नदी के तट को विदीर्ण किया। उस भूमि के भीतर दीमक से ढककर तपस्या कर रहे कण्व मुनि हल के अग्रभाग के प्रहार से बाहर निकाल दिए गये जिसके कारण वे क्रोधित हुए। उन्होंने प्राण

को यह शाप दिया कि हृदय में स्थित रहने पर भी मनुष्य तुम्हारी ख्याति को नहीं जानेंगे तथा तुम्हारा माहात्म्य लुप्त हो जायेगा। इस प्रकार से मुनि के वाक्य को सुनकर देवताओं के स्वामी प्राण ने भी क्रोधित होकर कण्व को प्रतिदण्डित करते हुए शाप दिया कि तुम निन्दितकर्म को करने वाले एवं गुरुहीन हो जाओ। इसके बाद लुप्त हुए प्रभाव वाले प्राण अप्रत्यक्षरूप से देहधारियों के हृदय में निवास करने लगे।

कण्वोऽपि स्वगुरुं त्यक्त्वा सूर्यशिष्योऽभवत्तदा।
स दीक्षयितुमारेभे म्लेच्छान् धर्मबहिष्कृतान् ॥२३॥
वर्णानां गोत्रनाशे तु गोत्रं भवति काश्यपः।
वर्णहीनास्तु ये चान्ये ते कण्वान्तर्गतं गताः ॥२४॥
विलुप्ता कण्वशापेन प्राणविद्या शनैः शनैः।
केवलं योगगम्या सा न सामान्यजना विदुः ॥२५॥
यस्मै कस्मै न दातव्या रक्षणीया प्रयत्नतः।
दत्तापि नैव ज्ञास्यन्ति तत्त्वतः क्षुद्रबुद्धयः ॥२६॥
एवमुक्त्वा तदा देवी नायिका नाभिदर्शना।
निग्रहस्यानले चक्रे प्रविश्यान्तर्हिताभवत् ॥२७॥
निग्रहोऽपि तु प्राणाख्यां विद्यां परमदुर्लभाम्।
आत्मानं मेनिरे धन्यं लब्ध्वा वार्तां लिलेख ह ॥२८॥

॥इति निग्रहागमान्तर्गते विशुद्धोपागमे मोक्षाधिकारः ॥

कण्व मुनि भी अपने गुरु का परित्याग करके सूर्यदेव के शिष्य हो गये एवं उन्होंने धर्म से बहिष्कृत म्लेच्छों को दीक्षा देना प्रारम्भ किया। चारों वर्णों के गोत्र का नाश होने पर उनका गोत्र काश्यप समझना चाहिए। जो अन्य वर्णहीन लोग हैं, वे कण्व के अन्तर्गत आ गये (उनका कण्व गोत्र समझना चाहिए)। कण्व के शाप के कारण धीरे धीरे यह प्राणविद्या विलुप्त हो गयी। केवल योगबल से ही इसे जाना जा सकता है, इसे सामान्य लोग नहीं जानते हैं।

इस प्राणविद्या को जिस किसी व्यक्ति को नहीं देना चाहिए, प्रयत्नपूर्वक इसकी रक्षा करनी चाहिए। यदि सामान्यजनों को इसे दे भी दिया जाए, तो भी क्षुद्रबुद्धि होने से लोग इसे जान नहीं पायेंगे। इस प्रकार कहकर वह नाभिदर्शना नायिका देवी निग्रहाचार्य के अग्निचक्र (मणिपुर) में प्रवेश करके अन्तर्धान हो गयी। निग्रहाचार्य ने भी उस परम दुर्लभ प्राणविद्या को प्राप्त करके स्वयं को धन्य माना और इस घटना को लिपिबद्ध किया।

॥इस प्रकार निग्रहागम के अन्तर्गत विशुद्धोपागम में मोक्षाधिकार पूर्ण हुआ॥